# इकाई 2 विकास प्रतिमान विषयक बहस

संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 पृष्ठभूमि
2.3 भ्रमकारी अधिव्यापन
2.4 भू-नीति विषयक बहस
2.5 नियंत्रण प्रणाली
2.6 राष्ट्रीकरण का मुद्दा
2.7 योजना का मुद्दा
2.8 औद्योगिक सम्बन्ध
2.9 राजनीतिक बहस
2.10 भारतीय संविधान सभा का लक्ष्य-संकल्प
2.11 सारांश
2.12 अभ्यास

## 2.1 प्रस्तावना

किसी भी लोकतंत्र में, विकास का कोई आदर्श प्रतिमान रखना एक अनिवार्य पूर्वशर्त है। नीतियों का प्रतिपादन व परिपालन इस उद्देश्य से अपनाये गए विकास प्रतिमान पर बहुत अधिक निर्भर होता है। भारतीय राजनीति व व्यापार क्षेत्रों में, भारत में स्वतंत्रताप्राप्ति के समय एवं संविधान निर्माण के विषय में, भारत की विकास संबंधी भावी प्रगति विषयक तमाम बहसें चलीं। वस्तुत: किसी एकल अस्तित्व के रूप में भारत की उत्तरजीविता का नितांत महत्त्व उसके संस्थापकों के दिमाग़ में सबसे ऊपर था। एक आदर्श प्रतिरूप विकसित करने का उद्देश्य न सिर्फ़ लोकतांत्रिक सिद्धांतों की रक्षा करना था बल्कि एक व्यापक विकास सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक सामाजिक व राजनीतिक परिस्थितियाँ पैदा करना भी था। विकास के मुद्दों पर बहसें भू-नीतियों से लेकर औद्योगिक विकास व योजना तक जटिल एवं विविध थीं

## 2.2 पृष्ठभूमि

पिछली इकाई में हमने देखा कि, स्वतंत्रताप्राप्ति के समय, भारत के सामाजिक-आर्थिक विकास विषयक विचार की तीन मुख्यधाराएँ फूटीं : अल्प राज्य-नियंत्रण एवं समर्थन के साथ पूँजीवादी औद्योगीकरण राज्य के मार्गदर्शन में समाजवादी औद्योगीकरण और धारणात्मक रूप से राज्य सत्ता की अनास्था पर आधारित गाँधीवादी 'सर्वोदय' दृष्टिकोण।

वैचारिक बहस द्वितीय विश्वयुद्ध तथा देश-विभाजन से पैदा हुई राजनीतिक व आर्थिक समस्याओं द्वारा और जटिल बना दी गई। इस प्रकार, खाद्यपूर्ति पर नियंत्रण का सवाल जो युद्ध के दौरान थोपा गया

था, एक ऐसे देश के लिए संकटपूर्ण बन गया जिसके उर्वरतम खाद्य-उत्पादक प्रात अब पाकिस्तान में चले गए थे और जो शरणार्थियों के अंतर्वहन की बाढ़ झेल रहा था। गाँधीजी ने नैतिक आधार पर नियंत्रण का विरोध किया क्योंकि इसने भ्रष्टाचार को बढ़ावा दिया था, और नियंत्रण उठा लिया गया। परिणामत: खाद्य-मूल्य तेजी से बढ़े और नियंत्रण दोबारा लागू करना पड़ा।

## 2.3 भ्रमकारी अधिव्यापन

उपरोल्लिखित तीन मुख्य विचारधाराएँ एक दूसरे से स्पष्टतया पृथक्त नहीं थीं। ग़रीब से ग़रीब लोगों के प्रति कोई भी भारतीय राजनेता गाँधीजी से अधिक दृढ़प्रतिज्ञ नहीं था। इस बात ने उनको समाजवादी स्थिति के करीब रखा। परन्तु कोई भी भारतीय राज्य सत्ता हेतु इतनी अनास्था नहीं रखता था जितना कि गाँधीजी, और इस बात ने उन्हें नैतिक रूप से आर्थिक गतिविधियों संबंधी राज्य नियंत्रण के खिलाफ़ कर दिया। इस बात ने उन्हें भारतीय पूँजीवादी वर्ग का प्रिय व्यक्ति बना दिया। तथापि भारतीय पूँजीपतियों ने लघु व कुटीर उद्योगों पर गाँधीजी द्वारा बल दिए जाने को निरस्त कर दिया जिनको, उनके अनुसार, अल्पकालिक रूप से स्थान तो दिया जाना चाहिए परन्तु सिर्फ़ देश में बेरोज़गारी की समस्या से निबटने के लिए ही। पूँजीवादियों की ही भाँति ये समाजवादी नए-नए अनौपनिवेशित अल्पविकसित देशों की आर्थिक समस्याओं को हल करने में मुख्य रणनीति के रूप में वृहद-स्तरीय उद्योगों में विश्वास रखते थे, और स्वभावत: लघु व कुटीर उद्योग की प्रभावोत्पादकता को निरस्त करते थे। परन्तु, पूँजीवादियों से भिन्न, वे राज्य नियंत्रण में दृढ़ विश्वास रखते थे।

इस बहस का एक पक्ष राष्ट्रीयकरण की परम्परागत समाजवादी नीति को महत्त्व देता था जैसा कि सोवियत गणराज्य संघ में अमल में था। स्वतंत्रतापूर्व नेहरू के कथनों और स्वतंत्र भारत की सरकार के प्रधानमंत्री के रूप में उनके अधिष्ठापन ने भारतीय पूँजीपतियों के बीच एक ख़तरे का संकेत किया। भारत में औद्योगिक श्रमजीवी वर्ग के बीच बढ़ती युद्ध-प्रियता से जुड़ा यही कारण था जिसने औद्योगिक संबंधों के विषय में आलोचनात्मक प्रश्न उठाये। भारतीय पूँजीपतिजन स्वभावत: श्रमिक संघवाद एवं श्रम सिद्धांत हेतु राज्य समर्थन को पसंद नहीं करते थे। गाँधीजी ने श्रमिक संघवाद का तब तक पक्ष लिया जब तक कि वह उद्योग-मालिकों के साथ मित्रतापूर्वक काम करता रहा और इस प्रकार वर्ग-विरोध की धारणा को बचा रखा। समाजवादी सिद्धांत वर्ग-विरोध पर ही आधारित था। इसने भारत के औद्योगिक पूँजीपतियों के लिए यह संभव बना दिया कि वे अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए गाँधी के नाम का प्रयोग कर सकें।

ऐसा सिर्फ़ भूमि-सुधार के प्रश्न पर ही हुआ कि सर्वाधिक राष्ट्रीय सर्वसम्मति प्राप्त हुई। यह अंशत: इस कारण था कि भूमि का स्थायी बंदोबस्त पूरे देश में नहीं फैला था और स्थायी बंदोबस्त का बड़ा टुकड़ा– पूर्वी बंगाल पाकिस्तान को चला गया था। फिर भी जागीरदार तथा शेष ब्रिटिश भारत में अन्य मध्यवर्ती अधिकारधारक इस नए रुझान से नाखुश थे।

## 2.4 भू-नीति विषयक बहस

भूमिसुधार के उस प्रश्न से ही शुरुआत करना सुविधाजनक रहेगा जिस पर सर्वाधिक मतैक्य था। पिछली इकाई में यह देखने में आया कि भारत के बड़े उद्योगपतियों की 'बम्बई योजना' भी भूमि-सुधारों को

समझती थी। 28 जून 1946 को बिड़लाओं के गृह-पत्र *ईस्टर्न इकनॉमिस्ट* ने यह घोषित करते हुए भूमि सुधार हेतु एक मज़बूत पक्ष तैयार किया कि 'ज़मींदारों के पास अपने अस्तित्व के लिए कोई आर्थिक औचित्य प्रतिपादन नहीं है।' दिसम्बर 1946 में जे.सी. कुमारप्पा, एक सच्चे गाँधीवादी, के नेतृत्व में कांग्रेस की राष्ट्रीय योजना समिति की भूमि-सुधार संबंधी उप-समिति ने भूमि सुधार की तीन अवस्थाएँ सामने रखीं : ज़मींदारी व अन्य मध्यवर्ती अधिकारों का अंत, वास्तविक किसानों को अधिभोक्ता अधिकार दिलाना और भूमि धारण पर अधिकतम सीमा।

ज़मींदारी और मध्यवर्ती अधिकारों की नियति इस प्रकार तय थी। इस बहस में, इसी कारण, क्षतिपूर्ति पर ध्यान केन्द्रित किया गया। भारत की संविधान सभा में सम्पत्ति के अधिकार पर चर्चा के दौरान यह विषय तीक्ष्ण हो गया। 2 मई 1947 को राजा जगन्नाथ बक्श सिंह ने सम्पत्ति के अधिकार विषय प्रारूप अनुच्छेद में एक संशोधन का प्रस्ताव रखा जो ('क्षतिपूर्ति' से पहले) 'उचित' शब्द लिखकर मुआवज़ा दिए जाने पर, सार्वजनिक उद्देश्य से, राज्य द्वारा निजी सम्पत्ति के अधिग्रहण किए जाने को अनुमति देता था। सरदार वल्लभभाई पटेल ने यह स्पष्ट करते हुए इस संशोधन प्रस्ताव को खारिज कर दिया कि ज़मींदार लोग अथवा उनके कुछ प्रतिनिधि इस तरीके से भूमि-सुधार कार्यक्रम को निष्फल नहीं कर सकते। 'उन्हें समय को पहचानना चाहिए और समय के ही साथ चलना चाहिए', उन्होंने घोषित किया। ज़मींदारी उन्मूलन के लिए प्रांतों में विधान पहले ही लागू किए जा रहे थे और इस आशय के कानून संविधान लागू होने के पहले से ही बनाए जाते रहे थे। 'अधिग्रहण प्रक्रिया यहाँ पहले से ही मौजूद है और विधायिका ज़मींदारियों को ख़त्म करने हेतु कदम पहले ही उठाती रही है', पटेल ने बयान दिया।

## 2.5 नियंत्रण प्रणाली

खाद्य-आपूर्ति पर नियंत्रण एवं राशन व्यवस्था द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान आवश्यक हो गई थी ताकि साम्राज्यवादी सरकार खाद्य की आपूर्ति युद्ध मोरचों पर कर सके। युद्ध समाप्ति पर बाज़ार की निरन्तर अनिश्चितता के मद्देनज़र यह जारी रखी गई। विभाजन ने खाद्य मोरचे पर अभाव को सिर्फ़ बदतर ही किया।

14 जनवरी 1944 को *ईस्टर्न इकनॉमिस्ट* ने सुझाया कि 'कार्यक्षेत्र व लक्षण में, नियंत्रणों की वर्तमान व्यवस्था का क्रमिक सुदृढ़ीकरण किया जाए, ताकि वह न सिर्फ़ शान्ति अर्थव्यवस्था के सहज संक्रमण को मज़बूती प्रदान करे, बल्कि हमारे देश में दीर्घावधि आर्थिक योजना का साधन भी बन सके।' 1946 में, ग़लाँकि, यह मुद्दा विवादास्पद हो गया।

उस वर्ष जल्द ही जाने-माने अर्थशास्त्रियों, ए.डी. गोरवाला और डी.आर. गाडगिल, को लेकर 'जिन्स मूल्य बोर्ड' नियुक्त कर दिया गया। इसने उसी वर्ष एक रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें सिफ़ारिश की गई थी कि 'नियंत्रण व्यवस्था का सुधार हो न कि उसकी समाप्ति।' दूसरी ओर, सदस्यों के रूप में अधिकतर औद्योगिक आकर्षक व्यक्तियों वाली सितम्बर 1947 में नियुक्त 'खाद्यान्न नीति कमेटी' द्वारा उसी वर्ष दिसम्बर में खाद्य-नियंत्रण की वर्तमान व्यवस्था के तहत सरकार की वचनबद्धता को घटाने की सिफ़ारिश करती एक अंतरिम रिपोर्ट बहुमत द्वारा अंगकृत की गई और प्रस्तुत की गई। जैसा कि हमनें पिछली इकाई में देखा, गाँधीजी ने अपना नैतिक समर्थन विनियंत्रण माँग को दिया और नियंत्रण एक अवधि-विशेष के लिए हटा लिया गया। जब दाम ज़्यादा चढ़ गए, नियंत्रण फिर से लागू कर दिया गया।

## 2.6 राष्ट्रीकरण का मुद्दा

भारतीय व्यापारीगण समाजवादियों एवं वाम उग्रपन्थियों से जन्म रहे राष्ट्रीयकरण की बात से भयभीत थे। 14 जून 1946 को ईस्टर्न इकनॉमिस्ट ने घोषणा की : 'हम अर्थव्यवस्था की पूरी शृंखला के समग्र एवं तत्काल समाजीकरण के सोवियत आदर्श को निष्कपट रूप से निरस्त करते हैं।' भारतीय वाणिज्य एवं उद्योग महासंघ (फिक्की) के बीसवें वार्षिक सत्र में जवाहरलाल नेहरू को व्यापारियों को आश्वस्त करना पड़ा। 'ऐसी कल्पना करना ग़लत है', उन्होंने कहा, 'कि यह सरकार उद्योग को नुकसान पहुँचने की राह पर है। यह हमारी बेवकूफ़ी होगी। हम उद्योग के लिए सुविधाएँ तथा उत्पादन हेतु सुविधाएँ तकनीकी, वैज्ञानिक एवं विद्युत संसाधन, यथासम्भव मुहैया कराना चाहते हैं।' 4 अप्रैल 1947 को, अखिल-भारतीय विनिर्माता संगठन को एक सम्बोधन में उन्होंने यह आश्वासन फिर दोहराया।

## 2.7 योजना का मुद्दा

यद्यपि भारतीय जनता के सभी वर्गों के बीच योजना के विचार का आमतौर पर स्वागत हुआ, योजना के लक्षण विषयक उनके विचारों में भिन्नता थी। भारतीय व्यापारियों ने 'सोवियत-रूपी' योजना को दृढ़ता से ठुकरा दिया और राज्य निर्देशन की एक अस्पष्ट व्यवस्था का स्वागत किया। वे उन मूल व गुरु उद्योगों के विस्तार में राज्य की भूमिका का भी स्वागत करते थे जिनके लिए उनके पास ज़्यादा संसाधन नहीं थे। परन्तु राज्य की भूमिका, उनके अनुसार, कम से कम रहेगी। समाजवादी व वाम उग्रपंथियों ने राष्ट्रीय आर्थिक गतिविधियों में राज्य की और अधिक भूमिका की सम्भावना पर विचार किया।

ऐसा माना जाता है कि सरदार वल्लभभाई पटेल प्रथम दृष्टिकोण के प्रति सहानुभूतिशील थे और जवाहरलाल नेहरू दूसरे के प्रति। तथापि, पटेल को माना जाता है कि उन्होंने सरकार द्वारा उस योजना आयोग की स्थापना का सशक्त विरोध किया था जिसको वह समझते थे कि सोवियत संघ की आर्थिक विचारधारा को ही प्रकट करेगी और सरकार के अधिकारक्षेत्र का अतिक्रमण करेगी। यह पटेल की मृत्यु के बाद ही हुआ कि एक ऐसा भारतीय योजना आयोग स्थापित किया जा सका जो मंत्रिमण्डल के अधीन हो और प्रधानमंत्री उसका अध्यक्ष हो।

## 2.8 औद्योगिक सम्बन्ध

श्रमिक संघ के मोरचे पर सबसे तीक्ष्ण विवाद उठा। 1920 में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुरोध पर जब अखिल-भारतीय श्रमिक संघ कांग्रेस (ऐटक) की स्थापना हुई, कांग्रेसजनों ने आमतौर पर स्वयं को इससे अलग रखा। वे इसमें 1922 में हुए अखिल-भारतीय कांग्रेस कमेटी के गया अधिवेशन के बाद ही सम्मिलित हुए। गाँधीजी के प्रत्यक्ष संरक्षण वाले अहमदाबाद वस्त्रोद्योग कर्मचारी संघ ने इसमें कभी शिरकत नहीं की। परिणामत: 'ऐटक' साम्यवादियों व समाजवादियों के ही कड़े प्रभाव में रहा। जब, 1942 में और उसके बाद, 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के चलते, कांग्रेसजन, कांग्रेसी समाजवादियों समेत, बड़ी संख्या में जेल गए, यह क्षेत्र पूरी तरह से साम्यवादियों के लिए छोड़ दिया गया।

ये भेद दो मुख्य कारकों द्वारा गंभीर बना दिये गए। 1942 में कम्युनिस्ट पार्टी ने भारत छोड़ो आन्दोलन का विरोध किया था जिसके आधार पर अखिल-भारतीय कांग्रेस कमेटी के साम्यवादी सदस्यों को

निष्कासित कर दिया गया। दूसरे, द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद, मज़दूर मोरचे में साम्यवादी युयुत्सा बहुत बढ़ गयी। सत्ता के सहज हस्तांतरण की दृष्टि से, जो अनेक ब्रिटिश उद्योगों को भारतीय हाथों में सहज ही सौंपे जाने के साथ हुआ, यह श्रमिक युद्ध-प्रियता कांग्रेस नेतृत्व द्वारा नापसंद की गई जिसे भारतीय वृहद् व्यापार का समर्थन प्राप्त था। कांग्रेसी नेताओं ने औद्योगिक विवादों का अनिवार्य विवाचन निर्धारित किया और कर्मचारियों के हड़तालाधिकार का विरोध किया।

1947 के आरम्भ में, एक हिन्दुस्तान मज़दूर सेवक संघ की स्थापना की गई जिसके केन्द्र में था अहमदाबाद वस्त्रोद्योग कर्मचारी संघ। जनशक्ति जुटाने में हिन्दुस्तान मज़दूर सेवक संघ की असफलता के मद्देनज़र, मई 1947 में पटेल के नेतृत्व में कांग्रेस के शीर्ष नेताओं ने नई दिल्ली में एक उच्च-स्तरीय सम्मेलन किया और एक पृथक् श्रम संगठन बनाने का फ़ैसला किया। परिणामस्वरूप भारतीय राष्ट्रीय संघ कांग्रेस (इन्टक) की स्थापना हुई। एक अन्य वर्ष के अन्दर-अन्दर दो और केन्द्रीय श्रम संगठनों ने जन्म लिया – हिन्द मज़दूर सभा (इन्टक से टूटकर) और संयुक्त श्रमिक संघ कांग्रेस (ऐटक से टूटकर)।

सत्ता हस्तांतरण के समय, जब भारतीय पूँजीवाद पनप रहा था, इसी कारण, वर्ग-विवाद के मुद्दे ने तीव्रता प्राप्त कर ली और इसने औद्योगिक संबंधों को सहज ही प्रभावित किया। पूँजीवादियों के लिए औद्योगिक विकासार्थ औद्योगिक शान्ति ज़रूरी थी और युद्धप्रिय श्रमिक संघवाद औद्योगिक शान्ति के प्रति अपकारी था। चूँकि स्वतंत्रता प्राप्त हो चुकी थी, साम्यवादी व समाजवादी चाहते थे कि अर्थव्यवस्था के भीतर वर्ग-संबंध शीघ्रातिशीघ्र कायम किए जाएँ।

## 2.9 राजनीतिक बहस

स्वतंत्रताप्राप्ति की अवधि के आसपास वैचारिक बहस ने राजनीति पर अपना प्रभाव छोड़ा।

प्रथम युद्धोपरांत बजट स्फीतिविषयक था। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्फीतिकारी प्रवृत्ति का सामना करने के लिए अंतरिम सरकार के वित्त मंत्री, लियाक़त अली खान ने, एक बजट प्रस्तुत किया जिसमें एक लाख रुपये से अधिक सभी व्यापार लाभों पर 25% कर का प्रस्ताव था। इस कर का अभिप्राय था दौलतमन्द भारतीयों की खर्चीली आदतों पर रोक लगाना और यह समाजवादी रंग में रँगा था। परन्तु उसने उन कांग्रेसियों के बीच तीव्र उत्तेजना पैदा कर दी जो यह आरोप लगाते थे कि यह बजट उन व्यापारियों के हितों को नुकसान पहुँचाने पर अभिलक्षित था जो अधिकतर कांग्रेस समर्थक थे। इस बजट ने व्यवहारत: कांग्रेस-लीग सहयोग का अंत सुनिश्चित कर दिया और देश के विभाजन की ओर ले जाते मुख्य कारकों में एक रहा।

स्वतंत्रताप्राप्ति की पूर्वसंध्या पर, जून 1947 में, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति ने निष्कर्ष निकाला कि यद्यपि स्वतंत्रता आन्दोलन बलों ने साम्राज्यवादी शासकों को मज़बूर किया कि वे भारतीय नेताओं के साथ खुला समझौता करें, पूर्ववर्ती भारत के राजाओं, बड़े ज़मींदारों व वृहद व्यापार के साथ नया गठबंधन करने का प्रयास कर रहे थे। फिर भी, पार्टी का दावा था कि 3 जून 1947 के माउण्टबैटन प्रस्ताव में शामिल करार ब्रिटिश भारत के विभाजन हेतु ने राष्ट्रीय उन्नति के लिए नई सम्भावनाओं का प्रस्ताव किया और ये दो लोकप्रिय सरकारें व संविधान सभाएँ राष्ट्रीय नेतृत्व के हाथों

में रणनीतिक शस्त्र थीं। इसने 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्रता का स्वागत् किया। दिसम्बर 1947 में, हालाँकि, उसने पैंतरा बदला और माउण्टबैटन योजना की स्वीकृति को एक साम्राज्यवादी-सामंतवादी-बुर्जुआ संयोजन के आधार पर कायरपूर्ण आत्म-समर्पण कहा। इस संकल्प ने 1948-49 में साम्यवादी युयुत्सा की ओर प्रवृत्त किया।

1947 में फॉरवर्ड ब्लॉक ने कांग्रेस छोड़ दी। 28 फरवरी 1947 को कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी ने अपने नाम से 'कांग्रेस' शब्द हटाने का फैसला किया। राममनोहर लोहिया, एक समाजवादी नेता, ने कांग्रेस पर निहित स्वार्थों से समझौता करने का आरोप लगाया। मार्च में पार्टी ने ग़ैर-कांग्रेसियों के लिए सदस्यता खोल दी। मार्च 1948 में, सरदार वल्लभभाई पटेल ने, महात्मा गाँधी जिनकी जनवरी 1948 में हत्या कर दी गई थी, की सुरक्षा की उपेक्षा का आरोप लगाये जाने के बाद, कांगेस छोड़ने का फैसला कर लिया। जयप्रकाश नारायण ने बताया कि भारतीय संविधान सभा द्वारा बनाया गया प्रारूप संविधान बेढंगा है और प्रेरक नहीं है। उत्तर प्रदेश में पार्टी के विधानसभा सदस्यों ने, जो कांग्रेस के टिकट से चुने गए थे, इस्तीफ़ा दे दिया और पुनर्चुनाव का सहारा लिया परन्तु हार गए।

स्वतंत्रता के आसपास की अवधि में, इसी कारण, भारत के विकास की भावी दिशा-विषयक तीखी वैचारिक बहस देखी गई। कोई कौतुक नहीं कि इस वैचारिक वाद-विवाद ने भारतीय संविधान सभा की उन कार्यवाहियों को अंशत: प्रकट किया जिन्होंने संविधान की रचना की थी।

## 2.10 भारतीय संविधान सभा का लक्ष्य-संकल्प

इन सभी मुद्दों को 'लक्ष्य संकल्प' में व्यवस्थित करने का प्रयास किया गया, जो भारतीय संविधान सभा में उसकी कार्यवाहियों के एक काफ़ी शुरुआती चरण में पारित किया गया। उस संकल्प ने एक स्वतंत्र भारतीय अधिगणतंत्र की स्थापना का वचन दिया जो, अपने घटक भागों के साथ, समग्र सत्ता व अधिकार भारत की जनता से ही व्युत्पन्न करेगा। यह भारत के सभी लोगों को इन बातों की गारण्टी देता है – न्याय, सामाजिक, आर्थिक व राजनीति; सामाजिक स्थिति की, अवसर की व कानून के समक्ष समानता; विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, पूजा, व्यवसाय, कानून व सार्वजनिक नैतिकता के अधीन संघ व कार्रवाई की स्वतंत्रता। इसके अतिरिक्त, अल्पसंख्यकों, पिछड़े व जनजातीय क्षेत्रों एवं पददलित तथा अन्य पिछड़े वर्गों के लिए समुचित सुरक्षा उपाय मुहैया कराये जाएँगे।

ये उदारवादी एवं कल्याणकारी विचार, जैसा कि हम देखेंगे, भारतीय संविधान की उस प्रस्तावना में प्रकट हुए जो स्वतंत्र भारतीय राज्य की अनिवार्य धारणा प्रस्तुत करती है। मौलिक अधिकार व राज्यनीति – के निदेशक सिद्धांत उनका विस्तारण थे।

## 2.11 सारांश

इस इकाई में आपने स्वतंत्र भारत में विकास प्रतिमानों पर वाद-विवादों के विषय में जाना। कुछ बहसें गाँधीवादी दृष्टिकोणों व उनकी व्यवहार्यता पर केन्द्रित थीं, जबकि अन्य औद्योगीकरण के पूँजीवादी ढंग पर विमर्शित। बहस के मुद्दों में शामिल थे – नियंत्रण व्यवस्था, राष्ट्रीयकरण, औद्योगिक नीति इत्यादि। कुल मिलाकर, इन वाद-विवादों के अन्तिम परिणाम ने भारत की जनता के सभी पहलुओं में हितों की

रक्षा का वचन दिया – राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक तथा उदारवादी व कल्याणकारी विचारों को परिपुष्ट किया।

## 2.12 अभ्यास

1) भारत में भावी आर्थिक विकास के विषय में स्वतंत्रताप्राप्ति के समय भारतीय राजनीतिक नेतृत्व में मुख्य विचारधाराएँ क्या थीं? किस हद तक वे परस्पर विरोधी थीं और किस हद तक वे एक-दूसरे को प्रभावित करती थीं?

2) स्वतंत्रताप्राप्ति के समय भारतीय राजनीतिक नेतृत्व द्वारा परिकल्पित भूमि सुधार किस प्रकार का था? भूमि सुधार की ओर भारतीय व्यापारी वर्ग का क्या रवैया था?

3) स्वतंत्रताप्राप्ति के समय नियंत्रण व योजना विषयक क्या बहस छिड़ी थी?

4) 1948 में कांग्रेस समाजवादियों ने कांग्रेस क्यों छोड़ दी?

5) स्वतंत्रता के संबंध में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का क्या विश्लेषण था?

6) भारतीय श्रमिक आन्दोलन में फूट की ओर प्रवृत्त करती परिस्थितियों पर चर्चा करें।

7) भारतीय संविधान सभा के 'लक्ष्य संकल्प' ने क्या स्थापित करने हेतु उत्सुकता से प्रतीक्षा की?